अध्याय चौथा

जैनेंद्र पर विभिन्न प्रभाव।

१) जैन दर्शन, गाँधी विचारधारा और जैनेंद्र।

२) जैनेंद्र पर फ्रायड का प्रभाव।

३) मार्क्स का जैनेंद्र पर प्रभाव।

४) जैनेंद्र के प्रेरणा-स्रोत - रवीन्द्र।

५) शरत का जैनेंद्र पर प्रभाव।

६) जैनेंद्र पर [illegible] औपन्यासिक तंत्र का प्रभाव।

७) निष्कर्ष

DR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

अध्याय चौथा

जैनेंद्रपर विभिन्न प्रभाव

जैनेंद्र के उपन्यासों में नैतिकता को धक्का देनेवाली घटनाओं का विश्लेषण करने के पूर्व हमें लेखक पर जो विभिन्न प्रभाव हैं, उनका विवेचन करना उचित होगा।

जैनेंद्रपर निम्न प्रभाव हैं -

१) जैनदर्शन, गांधी-विचारधारा और जैनेंद्र
२) जैनेंद्रपर फ्रायड का प्रभाव
३) सार्त्र का जैनेंद्रपर प्रभाव
४) जैनेंद्र के प्रेरणा-स्त्रोत - रवींद्र
५) शरत् का जैनेंद्रपर प्रभाव
६) जैनेंद्रपर गैस्टाल्टवादी औपन्यासिक तंत्र का प्रभाव

१) जैनदर्शन, गांधी-विचारधारा और जैनेंद्र :

यह सर्वविदित है कि धर्म से जैनेंद्र जैनधर्मीय है, और कर्म से गांधी विचार-धारा के अनुयायी, इसलिए दृष्टव्य यह है कि जैनेंद्रजी की औपन्यासिक कृतियों में जैन-सिधान्त तथा गांधी-चिन्तन का प्रभाव कहाँ तक दीख पडता है।

हिंसा-अहिंसा का प्रश्न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनैतिक तथा तात्विक भूमिका पर से जैनेंद्रजी ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। अहिंसा को वे 'परम-धर्म' समझते हैं, इसलिए सशस्त्र क्रांति उनकी दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति का सही साधन नहीं हो सकता। अपने उपन्यासों में जैनेंद्र ने कुछ क्रांतिकारी पात्र चित्रित किए हैं, जैसे सुनीता में हरिप्रसन्न, सुखदा में हरिदा

तथा लाल, कल्याणी में पाल तथा विवर्त में जितेन। जैनेंद्रजी का सशस्त्र क्रांति में विश्वास नहीं है, अतः इनके पात्र या तो नये युग की आहट पाकर अहिंसात्मक सत्याग्रह की शरण लेते हैं अथवा कानून को आत्मसमर्पण करते हैं तथा अपने दल को तोड देते हैं। सुखदा उपन्यास का हरिदा तथा विवर्त का जितेन अपने दल का विसर्जन करके अपने को पुलिस के हवाले करा देता है। सशस्त्र क्रांति को विसर्जित करने के प्रयत्न में जैनेंद्रजी ने क्रांतिकारियों के साथ न्याय नहीं किया है। उनके बहुत सारे क्रांतिकारी पात्र कामग्रंथी से पीडित हैं। प्रेम की असफलता उनके मन में हिंसा को जन्म देती है और इसी हिंसा को जैनेंद्रजी ने क्रांतिकारिता का नाम दिया है। गुप्तता, लूटमार, आतंक उनकी विशेषताएँ हैं।

जितेन दस-बारह युवकों को इकठ्ठा करके दल स्थापन करता है। दल का कार्य है, रेल गिराना। परन्तु रेल गिराने का उद्देश्य क्या है? बिना किसी उद्देश्य से यह कार्य हो रहा है। देशभक्ति की महान् प्रेरणा इनके पीछे नहीं हैं। एक 'हरिदा' (सुखदा) को छोडकर चारित्रिक विशालता भी अन्य किसी क्रांतिकारी पात्र में नहीं है। इस तरह जैनेंद्रजी के उपन्यासों में चित्रित क्रांतिकारी पात्र अत्यन्त दुर्बल सिध्द हुए हैं। देश-भक्ति के लिए वे कुछ करते हुए प्रतीत नहीं होते हैं।

जैनेंद्रजी की कुछ नायिकाएँ अहिंसा का संबल लेकर जीवन-पथ पर अग्रसर होती है। अहिंसा का पालन अर्थात् किसी को दुःख न पहुँचाना और इस तरह की अहिंसा के पालन के लिए आवश्यक है अपरिमित कष्ट, सहिष्णुता एवं आत्मपीडा। जैनेंद्रजी की नायिकाएँ घोर से घोर आत्मपीडा सहती हुई दिखाई देती हैं, उदाहरण के तौर पर मृणाल, कल्याणी, सुनीता, भुवनमोहिनी तथा अनिता भी अपने प्रेमी का हृदय-परिवर्तन कराने के लिए अहिंसा का मार्ग अपनाती हैं। अहिंसा तथा आत्मपीडा जैसे महान् साधनों को उपयोग में लाकर

भी मृणाल का चरित्र गरिमामय नहीं बन पाया है। वह हमारी सहानुभूति बरबस खिंच लेती है। हमारी करूणा को आकृष्ट कर लेती है पर मृणाल जिन अहिंसा, आत्मपीडा आदि जैसे उच्च तत्वों को काम में लायी है, उनका उतना ऊँचा प्रभाव हम पर नहीं होता है। कोयलेवाले से कृतज्ञता जताने के लिए, उसके हृदय को दु:ख न पहुँचाने के लिए मृणाल घोर आत्मपीडा सहती है। उसे शरीर दान देती है। मृणाल ने अहिंसा, आत्मपीडा, पातिव्रत्य, सतीत्व आदि शब्दों का सहारा लेकर बडी कुशलता से अपने शरीर दान के कृत्य का समर्थन किया है। कोयलेवाले ने मृणाल को सहानुभूति दिखायी है पर इस तरह की सहानुभूति ही वासना का प्रवेश द्वार होती है। मृणाल कोयलेवाले की क्षणभंगुर वासना का शिकार हो गयी है। पति ने मृणाल का परित्याग करने के बाद इसका प्रतिकार करने के लिए एक साधन मृणाल के पास था सत्याग्रह जो गाँधीजी की सबसे बडी सीख हैं। अपने पातिव्रत्य की रक्षा के लिए पति के द्वार पर ही वह सत्याग्रह करती, (प्राण तक त्याग देती) तो मृणाल का चरित्र शायद ऊँचा हो जाता। वह पति की किसी भी बात का प्रतिवाद नहीं करती, अत: पति का संदेह पुष्ट हो जाता है। भारत में ऐसी पतिव्रता नारियों की कमी नहीं है, जो पति के द्वारा घर से बाहर निकाले जाने पर भी पति के द्वार से टस से मस नहीं होतीं, पर मृणाल ने वह नहीं किया है। पति की इच्छा के विरूध्द घर में रहना वह पातिव्रत्य के खिलाफ समझती है।

जैनेंद्रजी की दूसरी बहुचर्चित नायिका है ' सुनीता ' जिसके बारे में एक आलोचक ने कहा है, " रात के समय सुनसान जंगल में हरिप्रसन्न के सामने सुनीता के दिगम्बर हो जाने का रहस्य क्या है ? यह गाँधी की अहिंसा का साहित्यिक प्रतिपादन है और इसके लिए मैं जैनेंद्रकुमार का बहुत बडा प्रशंसक हूँ। साहित्य के क्षेत्र में गाँधी की अहिंसा का व्यवहार जैनेंद्र के अलावा और किसी के द्वारा इतने ऊँचे रूप में नहीं दिखाई पडा। गाँधी का अहिंसा का

मूलतत्व है सब कुछ सह कर, अपना सब कुछ देकर प्राण विसर्जन तक करके राक्षसवृत्ति वाले आक्रमणकारी पीडक के मन में दया उत्पन्न करना है। "[१] पर 'सुनीता' उपन्यास में सुनीता स्वयं हरिप्रसन्न से प्रेम करती है और अपने शरीर दान से हरिप्रसन्न के पवित्र प्रेम को चुनौती देना चाहती है।

परन्तु सुनीता ही क्यों, जैनेंद्र की अन्य नायिकाएँ जैसे मृणाल, अनीता, नीलिमा भी अपने प्रेमी पर शरीर-दान से या शारीरिक आकर्षण से विजय प्राप्त करना चाहती है, जो न जैन जीवन दर्शन का अनुसरण है, न गाँधी विचार-धारा का प्रतिपादन। दोनों ने नारी के शील-चारित्र्य तथा देह की पवित्रता पर काफी बल दिया है। वासनाओं पर विजय प्राप्त कर के नारी शरीर की पवित्रता पर दोनों ने विशेष रूप से बल दिया है। सदाचरण पर, नैतिक सामर्थ्य पर दोनों ने अपना ध्यान प्रमुखता से केंद्रित किया है। तो फिर जैनेंद्रजी की नायिकाओं के देहदान के पीछे क्या रहस्य है ? रहस्य यह है कि जैनेंद्र ऐसे अवसर पर न जैन-धर्मीय रह जाते हैं, न गांधीजी के अनुचारी। आधुनिकतम मनोविज्ञान में काम को उतना हेय नहीं समझा जाता है। वह तो एक स्वाभाविक प्रवृत्ति समझी जाती है। इसी आधुनिकता का प्रभाव जैनेंद्रजी की नायिकाओं पर कुछ अंश तक पडा हुआ है। काम को स्वाभाविक वृत्ति मानते हुए भी जैनेंद्र के संस्कार उनको आगे बढने नहीं देते हैं, इसलिए इनकी नायिकाएँ अपने प्रियतम को 'मुझे समूची लेलो' (अनीता) कहकर अथवा निरावरण होकर भी बच पायी है।

'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास' इस लेख में प्रो. राजेश्वर गुरू ने एक स्थान पर लिखा है, "जान पडता है कि फ्रायड से कुशल चीरफाड का

---

१) शिवनाथ, 'प्रेमचंदोत्तर उपन्यास,' आलोचना उपन्यास विशेषांक, पृष्ठ ११५, अक्टूबर, सन १९५४ ई.। डॉ. सिंधु भिंगारकर, 'जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी चित्रण, पृष्ठ २६४, दिल्ली, मार्च १९७३ ई. से उध्दृत।

काम सीखने के बाद, मर्ज का सही-सही पता पा जाने के बाद जैनेंद्र कुमार चुपके-चुपके जिसके लिए कहा गया है कि रहस्यात्मक ढंग से गांधीवादी इलाज की ओर उन्मुखता दिखाते हैं। "[१]

परन्तु अपने नारी-पात्रों पर जैनेंद्रजी ने गांधीवादी, इलाज किया होता तो उनके नारी-पात्रों का स्वरूप ही अलग होता। गाँधीजी की नारी बडी सशक्त है और तेजस्वी है। गांधीजी ने समता, स्वतंत्रता का समर्थन किया है और उस स्वातंत्र्य से जीवन को सही दिशा प्राप्त करने के लिए वे सदाचार का नियंत्रण चाहते हैं। गांधीजी की नारी घुल-घुल कर मर मिटने वाली नारी नहीं है। जीवन को लुंज-पुंज बनाने वाले बंधन को तोडने का ही प्रयत्न गांधीजी करते हैं।

जैनेंद्रजी ने अपने हर उपन्यास में प्रेयसीत्व या पत्नीत्व की समस्या उठायी है और पत्नीत्व उनकी दृष्टि से नारी-जीवन का आदर्श है। जैनेंद्रजी की दृष्टि से घर ही नारी के जीवन का ध्येय है। राजनीति को उनकी दृष्टि से नारी के लिए निषिद्ध (नीलिमा-मुक्तिबोध) क्षेत्र हैं। उसके विपरीत गांधीजी जीवन के हर क्षेत्र में प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक क्षण, नारी को अपने साथ समानता से ले चलने को इच्छुक हैं। वे मानते हैं कि ज्ञान और विज्ञान पर दोनों का समान अधिकार है, खेत, कल-कारखाने, सामाजिक कार्य तथा राजनीति दोनों का क्षेत्र हैं। अत: स्पष्ट है कि जैनेंद्र जी की नारी भावना पर उनके जैन संस्कारों का प्रभाव है। जो नारी को मुक्ति का अधिकार नहीं देता। आज की सामाजिक स्थिति के कारण जैन महिलाओं को अनायास कुछ स्वतंत्रता

---

१) प्रो. राजेश्वर गुरु, 'हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास,' 'साहित्य संदेश,' आधुनिक उपन्यास अंक, पृष्ठ ३४, जुलाई-अगस्त सन १९५६ ई। डॉ. सिंधु भिंगारकर, 'जैनेंद्र के उपन्यासों मे नारी चित्रण,' पृष्ठ २६५, दिल्ली, मार्च १९७३ ई से उध्दृत।

मिली है सो बात अलग । और उतनी ही स्वतंत्रता जैनेंद्र नारी को देना चाहते हैं । समस्या तो उन्होंने ली है ` घर ` या ` बाहर ` की, पर लौट फिर कर इनकी नारी अंत में घर की चहार दीवारी में वापस आयी हुई मिल जाती है क्योंकि प्रेम सेवा, त्याग, आत्म बलिदान से ही तो जीवन संपूरित होता है ।

जैनेंद्रजी की दो नायिकाएँ गाँधीजी की विचारधारा से कुछ अंश तक साधर्म्य रखती हैं । ` परख ` उपन्यास में कट्टो बिहारी को अपने बंधन में बाँध लेती है, ` वैधव्य यज्ञ ` में बिहारी का साथ प्राप्त करती है । कट्टो-बिहारी का ब्याह होता है पर यह ब्याह अनोखा ब्याह है, जिसमें ` दोनों दूर हैं फिर भी बिल्कुल पास । अलग फिर भी अभिन्न । दो, फिर भी एक । एक ही उद्देश्य, एक ही जीवन लक्ष्य में पिरोये हुए । महाशून्य इस विवाह का साक्षी है । ` कट्टो-बिहारी ` के इस अनोखे विवाह में गाँधीजी के विवाह और ब्रह्मचर्य के विचारों की छाया दीख पडती है । स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में गाँधीजी के विचार इसी तरह के कुछ आध्यात्मिक उच्च आदर्शों को लिए हुए हैं ।

` जयवर्धन ` उपन्यास की नायिका इला अविवाहित होकर भी जयवर्धन के साथ रहती है । वह जयवर्धन की अभिन्न संगिनी है फिर भी पूर्ण ब्रह्मचारिणी । जयवर्धन और इला के शारीरिक संबंधों की पवित्रता दोनों के जीवन को बहुत ऊँचे स्तर तक उठा देती है । उनके शत्रु तक (स्वामी चिदानन्द) दोनों के अवैध संबंधों के प्रमाण की खोज में हैं, पर उनको भी वह प्रमाण नहीं मिल रहा है । नर-नारी का यह अशरीरी उज्वल किन्तु प्रगल्भ प्रेम सम्बन्ध गाँधी दर्शन से अधिक मिलता-जुलता है ।

जैनों का अनेकान्तवादी दृष्टिकोण भी जैनेंद्रजी ने अपने कुछ उपन्यासों में विशिष्ट अर्थ से अपनाया है । एक पात्र को समझाने के लिए केवल एक ही व्यक्ति का एक दृष्टिकोण अपूर्ण होगा । व्यक्ति जीवन के विभिन्न पहलू होते

हैं। व्यक्ति जीवन का संपूर्ण सत्य समझाने के लिए केवल एक ही धारणा से काम नहीं चलेगा। अनेक दृष्टिकोणों से उसके जीवन पर प्रकाश डालना होगा, इसलिए जैनेंद्र ने अपने औपन्यासिक तंत्र में अनेकान्तवादी दृष्टिकोण अपनाया है। जैसे 'कल्याणी' उपन्यास में श्रीधर का कल्याणी के बारे में दृष्टिकोण, वकील साहब का कल्याणी के बारे में दृष्टिकोण, पाल का कल्याणी के बारे में मत आदि बातों से कल्याणी के चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयत्न लेखक ने किया है। 'जयवर्धन' में जयवर्धन और इला दोनों का चरित्र लेखक के सामने है। मिश्र हूस्टन, आचार्य चिदानन्द, इंद्रमोहन आदि पात्रों द्वारा जयवर्धन और इला के चरित्र की अनेक दृष्टिकोणोंसे होनेवाली धारणाएँ हमारे सामने रही हैं। एक ही व्यक्ति या वस्तु की तरफ अनेक दृष्टिकोणों से देखने का अभिनव प्रयोग जैनेंद्रजी ने बड़ी कुशलता से अपने उपन्यासों में किया है।

मूल्यांकन :

इस तरह अपरिनिर्दिष्ट विवेचन से स्पष्ट होता है कि जैनेंद्र के उपन्यासों पर जैन दर्शन तथा गांधी विचारधारा का न्यूनाधिक मात्रा में प्रभाव परिलक्षित होता है। जहाँ जैन दर्शन के तत्व गांधी विचारधारा के माध्यम से आये हैं वहाँ दोनों विचारों का एक उत्कृष्ट समन्वय भी दृष्टिगत होता है। सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि जैनेंद्रजी के पात्र न केवल जैन दर्शन तथा गांधी विचारधारा से ही प्रभावित हैं अपितु आधुनिक पाश्चात्य चिंतन धारा का भी पर्याप्त प्रभाव उन पर दीख पडता है, जिसका विवेचन आगे किया गया है।

२) जैनेंद्र पर फ्रायड का प्रभाव :

जैनेंद्रजी के उपन्यासों में हमें बाह्य घटनाओं की अपेक्षा मानसिक संघर्ष का ही ऊहापोह अधिक दीख पडता है। जैनेंद्रजी ने जिस चरित्रों की उद्भावना की है, वे मानसिक धरातल पर ही अधिक विचरण करते हैं। "जैनेंद्र के बहुत सारे पात्र भावशरीरी प्राणी हैं जो अपनी भीतरी घुमडन के कारण वर्ग प्रतिनिधी पात्रों की मर्यादा लाँघ कर व्यक्ति चरित्र बन गये हैं।"[१]

जैनेंद्रजी चाहते हैं, कि पात्रों के अचेतन मन का संशोधन करके उसमें पडी हुई संचित राशि को प्रकाश में लाये, क्योंकि मनुष्य जैसे ऊपर से दीख पडता है वैसे ही वह नहीं होता। एक और भी कुछ शक्ति होती है जो उसके व्यक्तित्व को संचालित करती है। इस दृष्टि से मनुष्य के अचेतन मन के रहस्योद्घाटन का प्रयत्न जैनेंद्र के उपन्यासों मे हुआ है। फिर भी जैनेंद्रजी को हम फ्रायडवादी नहीं कह सकते क्योंकि फ्रायड के सिधान्तों के साथ उनके दार्शनिक सिधान्त भी उतने ही प्रबल हैं। सबसे महत्त्व की बात यह है कि जैनेंद्रजी स्वयं फ्रायड को जानने से इन्कार करते हैं। उन्होंने लिखा है - "मैंने फ्रायड का अध्ययन नहीं किया है। लेकिन व्यक्तित्व के मूल में फ्रायड की मगवत्ता स्वीकार्य नहीं है। जो उसके लिए मूल है, वह दिव्यत्व नहीं है। इस तरह स्वप्नों की उनकी व्याख्या मुझे ज्यों-की-त्यों मान्य होगी इसमें मुझे सन्देह है।"[२]

---

१. रणवीर रांग्रा, 'हिन्दी उपन्यासों में चरित्र-चित्रण का विकास,' पृष्ठ ३४३, सन १९६१ ई। भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली
२. जैनेंद्रकुमार, 'समय और हम,' पृष्ठ ५८०, सन १९६५, ई। पूर्वोदय, दिल्ली।

३) सार्त्र का जैनेंद्र पर प्रभाव :

जैनेंद्र और सार्त्र के दर्शन में जो कुछ साम्य तथा विरोध डॉ.भटनागरजी को दीख पडा, वह इस तरह है - " जैनेंद्र की विचारधारा को हम विशेषतया सार्त्र के अस्तित्ववाद के समकक्ष रख सकते हैं। सार्त्र की तरह जैनेंद्र भी मनुष्य को बेचारा मानते हैं पर सार्त्र के लिए यह ' बेचारापन ' मनुष्य के स्वतंत्र कर्तृत्व का स्वाभाविक विकास है और उसी में उसकी महानता है। जैनेंद्र मनुष्य को बेचारा बना कर ही छोड देते हैं। सार्त्र के निराशावाद में आशावाद की झलक है, जैनेंद्र का नियतिवाद से निर्मित निराशावाद घनघोर हो उठता है।"[१]

अस्तित्ववादी मनुष्य वस्तुगत अनुभवों के प्रति अविश्वासी होता है। उसका कथन है कि वस्तुगत बोध अंतर्बोध पर आधारित रहता है इसलिए वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न होगा। वही धारणा हमें जैनेंद्र के दर्शन में दीख पडती है। एक ही पात्र के चरित्र की तरफ भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखने का जैनेंद्रजी प्रयास करते हैं।

अस्तित्ववादियों की भाँति जैनेंद्र भी अस्तित्व को मूलतत्व मानते हैं। उनकी दृष्टि से होना ही जीना है। फलत: बुध्दि द्वारा किसी को समझाने की चेष्टा भूल है। पात्रों की चारित्रिकता होने में है। उनके कर्तृत्व में हैं।

जैनेंद्र और सार्त्र के जीवन दर्शन में होनेवाली विभिन्नता पर प्रकाश डालते हुए भटनागरजी लिखते है, " जैनेंद्र की दार्शनिक भूमि सार्त्र जैसी सूक्ष्म होते हुए भी भिन्न है, यद्यपि उनकी औपन्यासिक उपलब्धि कुछ उसी प्रकार की

----

१. रामरतन भटनागर, ' जैनेंद्र साहित्य और समीक्षा, ' साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण १९५८ ई.।

अनिर्दिष्ट है जिस प्रकार सार्त्र की। "[1]

सार्त्र निरीश्वरवादी है, तो जैनेंद्र ईश्वरवादी। सार्त्र और जैनेंद्र दोनों पीडा को मानते हैं पर दोनों की पीडा में काफी अंतर है। सार्त्र के Anguish की तरह जैनेंद्र की पीडा भी सूक्ष्म वस्तु है परन्तु प्रकृत्य: वह उससे भिन्न है। सार्त्र की पीडा व्यक्ति के समष्टि के प्रति होनेवाले दायित्व से निर्माण होती हैं तो जैनेंद्र का 'भीतरी दर्द' जो पीडा का दर्शन बन गया है, संभवत: जैन अहिंसा का तपा हुआ रूप है। "[2] सार्त्र न प्रचलित नैतिक बंधनों को मानता है न पापपुण्य को, पर जैनेंद्र के पात्र पापपुण्य की समस्या बार-बार उठाकर छोड देते हैं।

इस तरह सार्त्र और जैनेंद्र में तुलना करते हुए अंत में डॉ. भटनागरजी लिखते हैं - "जैनेंद्र की विचारधारा सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन के समकक्ष रखी जा सकती है। जीवन के प्रति वही गहरी और अतलस्पर्शी दृष्टि और उनकी अबूझता तथा रहस्यमयता पर बल एवं पीडा का दार्शनिक महत्व हमें उनकी विचारधारा में मिलता है।"[3]

---

१. रामरतन भटनागर, 'जैनेंद्र साहित्य और समीक्षा,' पृष्ठ १९०, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९५८ ई.।

२. रामरतन भटनागर, 'जैनेंद्र साहित्य और समीक्षा,' पृष्ठ १९७, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९५८ ई.।

३. रामरतन भटनागर, 'जैनेंद्र साहित्य और समीक्षा,' पृष्ठ १९२, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९५८ ई.।

इस तरह सार्त्र और जैनेंद्र में जो साम्य डॉ. भटनागरजी ने दिखाया है वह शायद जैन दर्शन और अस्तित्ववादीयों में होनेवाली समान पृष्ठभूमि के कारण भी हो सकता है। डॉ. भटनागर जी का निर्देशित किया हुआ दार्शनिक क्षेत्र देख लिया तो लगता है, कि दोनों चिंतकों ने जीवन की तरफ देखने की एक सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि पायी है। मनुष्य के मन के अचेतन के गहरे अंधे कुएँ में डुबकियाँ लगा कर मनुष्य की दुर्बलताएँ तथा कमजोरियों के संशोधन तथा दिग्दर्शन का प्रयत्न दोनों ने किया है। जैनेंद्र तथा सार्त्र दोनों प्रचलित नीतिनियमों पर विश्वास नहीं करते। दोनों की औपन्यासिक उपलब्धि अनिर्दिष्ट है, तथा साहित्य रहस्यमय और अबूझा है।

४) जैनेंद्र के प्रेरणा-स्त्रोत - रवींद्र :

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारतीय जन-जीवन नव-विकास की प्रकाश किरणों से प्रदीप्त होने लगा था। क्या सामाजिक, क्या राजनैतिक, क्या धार्मिक, क्या साहित्यिक, हर क्षेत्र में उन्नति के लिए अपूर्व त्यागमय व्यक्तियों का निर्माण हुआ। महात्मा गांधी, जवाहरलाल, अरविन्द, रमण महर्षि, जगदीशचंद्र बोस, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि हिमालय जैसे उत्तुंग, विश्वविख्यात देदिप्यमान नर-रत्न इसी काल में आविर्भूत हुए। साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ की उज्ज्वल प्रतिभा के द्वारा भारतीय जन-मानस मुखर हो उठा। 'रवींद्र' की काव्य-साधना बडी प्रखर थी। "उनकी काव्य-साधना में भारतीय मानस का वह अस्पष्ट आवेग और आकांक्षा साकार हो उठी, जिसका सर्व प्रधान मंत्र अबतक निषेधात्मक था। नवीन स्वाधीनता के स्वप्न से भारतीय जन-मानस ग्रहणशील हो उठा।"[१]

---

१. सं. तारिणी शंकर चक्रवर्ती, 'रवीन्द्र प्रवाह,' पृष्ठ २१२
(डॉ.) सिंधु भिंगारकर, 'जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी-चित्रण,' पृष्ठ २९१, दिल्ली, मार्च १९७२ ई. से उध्दृत।

महाकवि रवींद्रनाथ की बहुमुखी प्रतिभा के बारे में हजारीप्रसाद द्विवेदीजी लिखते हैं, " रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व बहुत विशाल था। उनकी रचनाओं का परिमाण और गांभीर्य अतुलनीय है। साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर अत्यधिक समृध्द बनाया है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रबन्ध, समालोचना आदि के क्षेत्र में उन्होंने भारतीय साहित्य को जो कुछ दिया है, वह अपूर्व और अपरिमेय है, किन्तु साहित्य के बाहर भी शिक्षा, राजनीति, धर्म, नृत्य, चित्रकला आदि विविध विषयों में इतना दिया है कि साहित्य का विद्यार्थी आश्चर्य भरी मुद्रा से देखता ही रह जाता है।"[१]

महाकवि की इस प्रगल्भ प्रतिभा का प्रभाव करीबन सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है। हिन्दी भी इन प्रभाव किरणों से प्रकाशित हो उठी। हिन्दी के छायावादी, रहस्यवादी कवियों पर रवीन्द्र की प्रतिभा की छाप स्पष्ट रूप से दीख पडती है। उपन्यास क्षेत्र में भी रवीन्द्र का अनुसरण हुआ है। हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेंद्रजी रवीन्द्रनाथ से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। अपनी पुस्तक ' ये और वो ' में उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर और उनकी जो मुलाकातें हुई थीं उनके बारे में प्रश्नोत्तर के रूप में लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि गुरु के बारे में जैनेंद्रजी के मन में कितनी आदर की भावना विद्यमान है।

जैनेंद्र बचपन से रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ पढते आये है। ' गीतांजली ' का उन्होंने मनोयोग से पठन किया है। वे मन ही मन विश्व कवि की पूजा करते

---

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी, ' उमेशचंद्र मिश्र लिखित ' विश्वकवि रवीन्द्रनाथ,' की भूमिका से उद्धृत, पृष्ठ १।
(डॉ.) सिंधु भिंगारकर, ' जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी-चित्रण,' पृष्ठ २९२-२९३, दिल्ली, मार्च १९७३ ई। से उध्दृत।

आये हैं। उनके ही शब्दों में " वे तो मानोलोक के देवपुरूष थे।"[१]

प्रथम ही मुलाकात में जैनेंद्र प्रत्यक्ष उनके व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होकर रवीन्द्र के बारे में लिखते हैं - " चेहरा मानो मनुष्य से अधिक देवमूर्ति का हो, मैं नहीं मान सकता था कि वह देवता है क्योंकि मनुष्य होना उससे बडी बात है। इससे मैं देवता नहीं चाहता था पर समक्ष देवोपमत के अतिरिक्त कुछ मिल ही नहीं रहा था।"[२]

इस तरह देखें तो जैनेंद्रजी के व्यक्तित्व और कृतित्व इन दोनों पर रवीन्द्र के साहित्य का गहरा प्रभाव हमें दिखायी देता है। रवीन्द्रजी के उपन्यासों में मिलनेवाली मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता हमें जैनेंद्र के उपन्यासों में मिल जाती है। साथ ही साथ नारी-जगत के बारे में रवीन्द्र के कुछ विचार हैं उनका भी प्रभाव है। रवीन्द्र ने नारी के स्वतंत्र होने के लिए अपने उपन्यासों में जो विवेचन किया है उसी प्रकार जैनेंद्रजीने भी अपने सभी औपन्यासिक कृतियों में सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार किया है।

इस प्रकार जैनेंद्रपर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव हमें दिखायी देता है।

५) <u>शरत् का जैनेंद्र पर प्रभाव</u> :

शरत् के उपन्यासों की प्रधान विशेषता है " नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण।" शरत् को नारी जाति का हिमायती कहा जाता था। समाज से ठुकराई गई अनेक समस्याओं से घिरी हुई असहाय नारी का प्रतिनिधित्व शरत्

---

१. जैनेंद्र कुमार, " ये और वे," पृष्ठ १, पूर्वोदय, दिल्ली, १९५४ ई।
२. जैनेंद्र कुमार, " ये और वे," पृष्ठ ७, पूर्वोदय, दिल्ली, १९५४ ई।

के उपन्यासों ने किया है । राजलक्ष्मी, किरणमयी, कमल जैसे नारियों को उन्होंने अपने हृदय की सहानुभूति से सिंचित किया है और उनको न्याय देने की भरसक कोशिश की है । " शरत् ने नारी हृदय के रहस्य को खोलने की चेष्टा की है और नारी को न्याय संगत मर्यादा दी है । उन्होंने दिखाया कि समाज ने जिनको कलंकिनी कहकर पंगत के बाहर कर दिया, वे हृदय की पवित्रता और अनुभूति के गौरव में असाधारण हो सकती है । "[१]

अपने " नारी का मूल्य " इस निबन्ध में शरत् ने प्रत्यक्ष-रूप से नारी-जाति पर किये गये अत्याचारों का सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन किया है । स्मृति-ग्रन्थ, शास्त्र, धर्म के बंधन किस तरह नारी जाति के प्रति अन्यायी रहे हैं इसका उन्होंने उदाहरणों के साथ वर्णन किया हैं । शरत् का विचार है कि शास्त्रों ने सतीत्व का एक बड़ा हौवा तैयार कर रखा है, जो नारी के विकास को राहुग्रस्त कर रहा है । सतीत्व की वेदी पर नारी का बलिदान ही दिया गया है । आज समय आया है, कि नारी का वास्तविक मूल्य समझा जाय । गृहिणी पद का भार उस पर लादकर घर की चारदीवारी में ही उसका जीवन पंगु न बनाया जाय ।

" नारी का मूल्य " शीर्षक प्रबन्ध में आये हुए विचारों से तथा साहित्य में निर्माण किये हुए पात्रों से शरत् को " दुर्नीति का प्रचारक " कहकर पुरानपंथियों ने अपमानित, लांछित भी किया है । फिर भी शरत् की प्रतिभा कुंठित नहीं हुई । शरत् की दृष्टि से परम्परागत नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं था । बंधी-बंधाई धारणाओं से नीति-अनीति की सूक्ष्म-परख करना असम्भव है, यही शरत् की धारणा थी । नीति-अनीति का मापदण्ड है प्रेम और सहानुभूति । शरत् की अधिकांश कहानियाँ प्रेम कहानियाँ है । विवाह

---

१. डॉ. सुबोधचंद्र सेन, " शरत् प्रतिभा, " पृष्ठ २४०१
डॉ. सिंधु भिंगारकर, " जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी-चित्रण, " पृष्ठ २९७ दिल्ली, मार्च १९७३ ई । से उधृत ।

सफल होता है और अप्रत्याशित प्रेम सफल होता है परन्तु यह सफलता दैहिक न होकर आत्मिक है । ` शरत् की नारियों के प्रेम में सैक्स की प्रधानता नहीं है, उनके पारस्परिक सम्बन्ध सामान्य ऐंद्रियता से रहित हैं इसलिए शरत् की कृतियों में स्नेह की निर्मल मन्दाकिनी बहती है, वासना की कलुषित वैतरिणी नहीं ।`[१]

नारी के सतीत्व के बारे में शरत् के विचार बड़े क्रांतिकारी हैं । उनके अनुसार देश और काल के साथ सतीत्व की धारणाएँ बदलती हैं । ` साहित्य में आर्ट और दुर्नीति ` इस निबंध में शरत् ने कहा है, - ` परिपूर्ण मनुष्यत्व सतीत्व की अपेक्षा बड़ा है । ` नारी के सतीत्व के जय जयकार के नारे लगाने वाले भारत देश में शरत् के इन विचारों का कितना विरोध किया गया होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है । इस दृष्टि से एकनिष्ठ प्रेम और सतीत्व ठीक एक ही वस्तु नहीं हैं । शरत् के अनुसार सतीत्व तन की वस्तु न रहकर मन की दीप्ति बन जाता है । जहाँ मन की पवित्रता है वहाँ तन की मजबूरी है, न पतिव्रता है, न अपवित्रता मानव धर्म सतीत्व से बड़ा है क्योंकि वह जीवन को मुक्त करता है, बाँधता नहीं ।

जैनेंद्र के उपन्यास-साहित्य के अंतरंग में शरत् सूक्ष्म रूप से प्रतिष्ठित है । जैनेंद्र के साहित्य में भी सतीत्व की समस्या बड़े प्रकर्ष से हमारे सामने आयी है । तन-मन के विभक्तिकरण से जैनेंद्र की शायद ही कोई नायिका बची हो । ` त्यागपत्र ` के मृणाल के सतीत्व की कल्पनाएँ शरत् के चिन्तन का सूक्ष्म अंश लिये हुए हैं जो प्रचलित कल्पनाओं को धक्का देनेवाली प्रतीत होती है ।

---

१. रामस्वरूप चतुर्वेदी, ` शरत् के नारी पात्र, ` पृष्ठ ३०१.
(डॉ.) सिंधु भिंगारकर, ` जैनेंद्र के उपन्यासों में नारी-चित्रण, ` पृष्ठ २९८, दिल्ली, मार्च १९७३ ई.। से उधृत ।

कट्टो प्यार करती है सत्यधन से, तो ब्याह करती है बिहारी से। कल्याणी ने ब्याह किया है डॉ. असरानी से पर मन-ही-मन पूजा करती है प्रीमियर की। भुवनमोहिनी, सुखदा अनिता सभी की हालत एक-सी है। जिससे प्रेम किया है, उससे ब्याह नहीं हो सकता है, अत: प्रेम और विवाह दोनों में अविरत संघर्ष चलता है और इस संघर्ष में जैनेंद्र की नायिकाओं की विशेषता यह है कि वह ब्याहता होने पर भी अपने प्रिय को शरीर देने को तैयार है। फिर सतीत्व कहाँ रहा ?

पर जैनेंद्र की सतीत्व की कल्पना की नींव का सूक्ष्म आधार शरत् की कल्पनाओं में ढूँढा जा सकता है। इसके बारे में डॉ. भटनागर जी लिखते हैं, "वास्तव में जैनेंद्र के साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण में शरत् का योगदान ही कदाचित सबसे अधिक रहेगा। उनके साहित्य संबंधी आदर्शों एवं मान्यताओं पर शरत् की छाप स्पष्ट है।"[१]

६) जैनेंद्र पर गेस्टाल्टवादी औपन्यासिक
तंत्र का प्रभाव :

औपन्यासिक तंत्र की दृष्टि से उपन्यास शिल्प के नव-निर्माण के समय जैनेंद्र जी में गेस्टाल्ट के सिधान्तों की झलक दीख पडती है। तंत्र में उन्होंने गेस्टाल्टवादी दृष्टिकोण अपनाया है। कथा की कडियाँ तोड दी है, जैसे तीन बिन्दुओं को इस तरह रखने से त्रिकोण की कल्पना हमारी आँखों के सामने आती है वैसे जैनेंद्रजी की अपेक्षा है कि कथा के कुछ अंशों से हम कथा की कल्पना करें। पात्रों के संभाषण भी उसी तरह से सूचित किये हैं। इन संकेतों से पूर्ण विचारों के आकलन का काम उन्होंने पाठकों पर छोड दिया है।

---

१. रामरतन भटनागर, 'जैनेंद्र साहित्य और समीक्षा,' साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, १९५८ ई.।

'अत: डॉ. देवराज उपाध्यायजी ने जो कहा है कि जैनेंद्र गेस्टाल्टवादी हैं, तो वह बात सत्य है पर वह तंत्र के क्षेत्र में विशेष रूप से लागू होती है। किन्तु वह तो उपन्यास की बाह्य रचना की बात हुई, मुख्यत: जैनेंद्रजी, मनुष्य के मानस की प्रवृत्तियों का, दमित वासनाओं का, कुंठाओं का विश्लेषण करना चाहते हैं, इस विश्लेषण के लिए गेस्टाल्ट-वादीयों की अपेक्षा फ्रायड के सिधान्तों ने ही उनकी सहायता अधिक की है। फिर भी बाह्य तंत्र का जहाँ प्रश्न है, जैनेंद्रजी पर गेस्टाल्ट के कुछ सिधान्तों का प्रभाव मानना ही पडेगा।'[१]

<u>निष्कर्ष</u> :

संक्षेप में इस अध्याय में जैनेंद्रजी पर जो विविध प्रभाव पडे है, उनकी विवेचना की है। उनमें कुछ दार्शनिक हैं, कुछ मनोवैज्ञानिक हैं तो कुछ साहित्यिक। कुछ भारतीय हैं तो कुछ पाश्चात्य। इनमें से किसी का प्रभाव जैनेंद्रजी मानते हैं, तो किसी से इन्कार करते हैं। जैन दर्शन, गांधी विचार-धारा तथा रवीन्द्र और शरत् का प्रभाव जैनेंद्रजी स्वयं मान्य करते हैं। उनके साहित्य में ये प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखायी देते हैं।

कुछ प्रभाव ऐसे हैं, जो जैनेंद्रजी को मान्य नहीं हैं जैसे फ्रायड, सार्त्र, तथा गेस्टाल्ट के मनोविज्ञान के प्रभाव। हो सकता है कि ये प्रभाव आलोचकों से आरोपित हो क्योंकि उनके साहित्य में इन प्रभावों की अप्रत्यक्ष झलक दीख पडती है। इन चिंतकों को न जानते हुए भी सहज, उत्स्फूर्त साहित्य निर्माण में इन

---

१. देवराज उपाध्याय, 'आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान,' साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन १९५६ ई.।

चिंतकों के चिंतन का, विचारधाराओं का तथा पात्रों के चरित्र का निर्माण हुआ हो ।

इन प्रभावों को मान्य करते हुए भी जैनेंद्रजी की अपनी विशेषता ही साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान निर्माण करने में समर्थ हुई है ।